References:

1. Aloysius I.S.J. et al., (2006). "Dalit WomenSpeak Out – Violence against Dalit Womenin India: Overview Report (of study in Andhra Pradesh, Bihar, Tamil Nadu/ Pondicherry and Uttar Pradesh). (New Delhi: National Campaign on Dalit Human Rights)
2. Buvinic, M. and King, E.M. (2007) 'Smart Economics', Finance and Development 44.2:7-12
3. Beall J. and Piron L-H. (2005). DFID Social Exclusion Review. LSE, UK, May. https://www.odi.org/sites/odi.org.uk/files/odi-assets/publications-opinion-files/2301.pdf
4. CADAM (2013). Research Study on Violence against Dalit Women in Different States of India. Centre for Alternative Dalit Media (CADAM) report. National Commission for Women (NCW) New Delhi, February 2, 2013.
5. Chatterjee B. and Ghosh D.K. (2001). In Search of a District Development Index: 2001, Table 14, 14 (a), 27 (b); for col. 4-8: WBHDR, Annexure Tables.
6. Giddens A. (1984). The Constitution of Society. Polity Press, Cambridge, in association with Basil Blackwell. Oxford. Pp: 1-402.
7. Giele J. Z. (1977). "Introduction: the status of women in comparative perspective", In Giele, J. Z, and Smock, A. C., eds. Women: roles and status in eight countries. New York: John Wiley, 3-31.
8. Hishor, S. (1997) 'Empowerment of Women in Egypt and Links to the Survival and Health of their Infants', paper presented at the Seminar on Female Empowerment and Demographic Processes, Lund (20"24 April).
9. Kabeer N. (1999). Development and Change. Vol. 30; pp:435-464. Institute of Social Studies, published by Blackwell Publishers Ltd., 108 cowley Rd. Oxford OY4 1JF. UH.
10. Lenoir, R. (1974/1989). Les exclus: Un Francais sur dix. Paris: Editions du Seuil.
11. Manorama R. (2005) "Situation of Dalit Women: Dalits Among the Dalits." Presentation to the World Social Forum, Porto Alegre. January.
12. Manorama R. (2006a) "Background information on Dalit women in India." http://www.rightlivelihood.org/manorama_publications.html
13. Rao A. (2005). In Anupama Rao(ed.), "Introduction." Gender and Caste. (London: Zed Books Ltd.) 1-48.
14. Silver H. (2015). Social Exclusion. The Wiley Blackwell Encyclopedia of Race, Ethnicity, and Nationalism, 1–7. doi:10.1002/9781118663202.wberen591 .
15. Rowlands, J. (1997) Questioning Empowerment: Working with Women in Honduras, Oxford: Oxfam Publishing.
16. Sen, A. H. (1985) 'Well-being, Agency and Freedom', The Journal of Philosophy 132(4),, 169"221.
17. Smith P.J. (2008): "From Beijing 1995 to The Hague 2006 – The Transnational Activism of the Dalit Women's Movement;" June . https://www.cpsa-acsp.ca/papers-2008/Smith-Peter.pdf
18. Thorat, et al., (2005). "The Women's Reservation Bill." Combat Law. 4:6 http://www.combatlaw.org/information.php?article_id=643&issue_id=25
19. UN. (1996). The Beijing Declaration and Platform for Action. New York: UN.
20. Weber, M. (1946). From Max Weber. H.H. Gerth & C.W. Mills (Eds.). New York: Oxford University Press.

भारतीय संघवाद का उभरता स्वरूप : केन्द्रीय संघवाद से वास्तविक संघवाद की ओर

डॉ० धनंजय झा

दुनिया भर के देशों में केंद्रीय, क्षेत्रीय और स्थानीय सरकारों का आधारभूत ढांचा बदल रहा है। इसके साथ इनमें सत्ता के स्वरूप में भी बदलाव देखा जा रहा है। सरकारों के पुराने स्वरूप के स्थान पर नये स्वरूप आने से केंद्रीय सरकार के स्वरूप पर प्रभाव पड़ रहा है और कई परंपरागत अधिकारों में कटौती हो रही है। सत्ता का बँटवारा स्थानीय स्तर पर होने से गठबंधन और भागीदारी पर आधारित सरकारों का नया स्वरूप सामने आ रहा है। कम से कम संसाधनों के इस्तेमाल से अधिक से अधिक उपलब्धि प्राप्त करने के लिए केंद्र, राज्य और स्थानीय सरकारों को शासन प्रक्रिया में एक-दूसरे से संवाद करना होता है। इसलिए विभिन्न स्तरों के सरकारी संगठनों में आपसी संवाद आवश्यक हो गया है। व्यापक लिखित संविधान के साथ संघवाद की नीति अपनाने के कारण बेहतर शासन संविधानों के प्रावधानों पर निर्भर हो गया है। इसमें केंद्र-राज्य संबंधों का विशेष स्थान है।

इस परिचयात्मक पृष्ठभूमि में, संघवाद का अर्थ, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, भारतीय संघवाद की कार्यप्रणाली और उसके राजनीतिक और वित्तीय आयामों पर चर्चा इस आलेख में की गई है। संघ के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द थ्मकमतंजपवद लैटिन भाषा के शब्द थ्वमकने से लिया गया है जिसका अर्थ 'संधि' या 'समझौता' होता है। एक राज्य, जो किसी संधि या समझौते का परिणाम होता है, एक संघ है। एक संघ राज्य एक ऐसा राजनीतिक संगठन है जो राष्ट्रीय एकता और राज्य के अधिकारों की रक्षा के लिए शक्ति प्राप्त करता है। यह सरकार की ऐसी व्यवस्था है जिसमें सरकार का कोई भी स्तर न तो पूर्ण रूप से दूसरे पर आश्रित है और न ही पूर्ण रूप से दूसरे से स्वतंत्र है।

संघवाद ऐसा साधन है, जो ऐसी प्रक्रिया के रूप में कार्य करता है जो विविधता भरे समाज को एकसूत्र में बांधने की क्षमता रखता है। संघवाद से सामाजिक-सांस्कृतिक विविधता और विभिन्न जातीय और क्षेत्रीय समूहों में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। यह राष्ट्रीय एकता, विविधताओं में सामंजस्य, साझा आर्थिक हितों को बढ़ावा देने और समस्याओं केशांतिपूर्ण समाधानों को प्रस्तुत करता है। दूसरे शब्दों में, संघवाद एक प्रणाली है जो स्वशासन और सत्ता के बंटवारे तथा संघ के विभिन्न हिस्सोंके हितों संतुलन को बढ़ावा देती है। भारत में संघवाद एक राष्ट्र द्वारा निर्मित नहीं है। यह केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण की एक लंबी प्रक्रिया के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया है।

भारतीय संघवाद का संक्षिप्त इतिहासः

आधुनिक भारतीय संघवाद की जड़ें ब्रिटिश शासन में तलाशी जा सकती है। सन् 1935 में पहली बार ब्रिटिश शासन ने भारत में संघीय सरकार की स्थापना के प्रयास किए। इसके लिए भारतीय शासन अधिनियम 1935 बनाया गया। इससे पहले ब्रिटिश शासन मुख्य रूप से प्रशासन के केंद्रीकरण पर आधारित था। भारतीय शासन अधिनियम 1935 में ब्रिटिश भारतीय प्रांत और रजवाड़ों को मिलाकर संवैधानिक लोकतंत्र की अवधारणा के साथ केंद्र और उसकी ईकाइयों के आधार पर भारतीय संघ का गठन किया गया। अधिनियम के अनुसार अति केंद्रीकरण के साथ संघ की स्थापना की गई जिसमें ईकाइयों के लिए अस्थायी स्वायत्तता के प्रावधान अपनाए गए। यह स्वायत्तता हमेशा केंद्र के विवेक और नियंत्रण पर आधारित थी हालाँकि इस अधिनियम के संघीय प्रावधान कभी लागू

सहायक प्राध्यापक (गेस्ट फैकल्टी) राजनीति विज्ञान विभाग, एल० एस० कॉलेज, मुजफ्फरपुर।

नहीं किए गए, लेकिन इस का प्रभाव स्वतंत्र भारत पर साफ दिखाई देता है। भारतीय संविधान का ढांचा संघीय है। लेकिन, इसके तत्व सुदृढ़ एकात्मक शासन के प्रतीक हैं। राज्य स्वायत्तता पूर्ण व्यवहार करते हैं। लेकिन अंतिम सत्ता केंद्र के नियंत्रण में निहित है।[2]

स्वतंत्रता के शुरुआती वर्षों में भारत जैसे विशाल और विविधतापूर्ण देश में संघीय नीति के प्रावधानों को लागू करना आसान नहीं था। संविधान के निर्माताओं ने सामान्य स्थितियों की तुलना में आपात स्थितियों के संबंध में ज्यादा सोचा जिसका परिणाम यह हुआ कि सत्ता के बंटवारे में असंतुलन हो गया। इससे राज्यों की न्यूनतम आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो सकी। भारतीय शासन व्यवस्था के लिए संसदीय संघीय संविधान का चयन भी देश के ऐतिहासिक अनुभवों का परिणाम है।

भारतीय संघवाद की प्रकृति

भारतीय संविधान के लागू होने के प्रारंभ से ही भारतीय संघवाद की प्रकृति पर सवाल उठाए जाते रहे हैं। हालाँकि भारतीय संविधान संघ के सभी आवश्यक तत्वों की पूर्ति करता है। लेकिन, पूरे संविधान में कहीं भी फेडरल या संघ शब्द का उल्लेख नहीं है। संविधान में इसके लिए यूनियन ऑफ स्टेटस- 'राज्यों का संघ' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसके बावजूद भारतीय संविधान में वे सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं जो किसी संघ के लिए जरुरी होता है। भारतीय संविधान की संघीय विशेषताएँ इस प्रकार है[3]-

दोहरा शासन

भारतीय संविधान दो स्तर पर शासन व्यवस्था का प्रावधान करता है। संविधान केंद्र स्तर पर अलग और राज्य स्तर पर अलग शासन व्यवस्था का प्रावधान करता है।

शक्तियों का बँटवारा

भारतीय संविधान में केंद्र और राज्य सरकारों की शक्तियों का स्पष्ट बँटवारा किया गया है। संविधान की सातवीं अनुसूची में शक्तियों के बंटवारे की व्यवस्था की गई है। संपूर्ण शक्तियों को केंद्रीय सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची में बाँटा गया है। केंद्रीय सूची में राष्ट्रीय महत्व के 97 विषयों को शामिल किया गया है। क्षेत्रीय स्तर के विषयों को राज्य सूची में स्थान दिया गया है जिसकी संख्या 66 है। तीसरी समवर्ती सूची में 47 विषय हैं जिन पर केंद्र और राज्य सरकारें दोनों कानून बना सकती हैं, लेकिन दोनों के टकराव की स्थिति में केंद्र का कानून मान्य होगा। जो विषय इन सूचियों में नहीं आ पाए और भविष्य में आने वाले विषय भी केंद्रीय सूची में रहेंगे। केंद्र के बनाए कानूनों का दायरा संपूर्ण राज्य का होगा जबकि राज्यों के कानूनों का दायरा उनका अपना क्षेत्र विशेष होगा।

लिखित संविधान

भारतीय संविधान लिखित संविधान है। इसी से केंद्र और राज्य सरकारें सत्ता और अधिकार प्राप्त करती हैं। भारतीय संविधान न केवल लिखित है, बल्कि यह बेहद सख्त और सर्वोच्च है। केंद्र और राज्य सरकारें दोनों संविधान के दायरे में काम करने के लिए बाध्य हैं।

स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका

भारतीय संविधान में स्वतंत्र एवं निष्पक्ष न्यायपालिका की व्यवस्था की गई है। यह केंद्र और राज्यों के बीच किसी भी विवाद के निपटारे के लिए भी उत्तरदायी है। यह अभिभावक की भूमिका का निर्वहन करती हैं और अंतिम व्याख्याता भी यही है। भारतीय संविधान की ये विशेषताएँ उसे साफतौर पर संघीय घोषित करती हैं। लेकिन, इनके अलावा संविधान में ऐसी एकात्मक शासन की विशेषताएँ भी मौजूद है जो उसकी प्रकृति को विवादास्पद बनाती हैं। केंद्र की आपातकालीन शक्तियाँ, राज्यपाल की केंद्र के एजेंट के रूप में भूमिका, राज्यों की केंद्र पर वित्तीय निर्भरता, समवर्ती सूची के प्रावधान, राज्य सभा में राज्यों का असमान प्रतिनिधित्व, एकल न्यायपालिका, शीर्ष पदों की शक्तियों के संबंध में संशोधन प्रक्रिया और योजना/नीति आयोग की भूमिका आदि ऐसी विशेषताएँ हैं जो संविधान के एकात्मक शासन के पक्ष को सामने लाती हैं।

इन विशेषताओं से साफ पता चलता है कि भारत में सही अर्थों में संघीय शासन नहीं है। विभिन्न विचारकों ने भारतीय संघ को अलग-अलग नाम दिए हैं। के.एम.

मुंशी ने इसे 'अर्धसंघ' कहा है। के.सी. वीअर ने कहा है- यह संघीय विशेषताओं के साथ एकात्मक राज्य है न कि एकात्मक विशेषताओं के साथ संघीय राज्य। भारतीय संघ को 'छद्म संघ' या 'संघीय ढांचा लेकिन एकात्मक आत्मा' भी कहा गया है। डब्ल्यू.एच. मोरिस जोंस का मत है कि भारतीय संघवाद एक तरह का सहकारी संघवाद है जहाँ केंद्र और राज्यों के बीच मोल-भाव की प्रक्रिया चलती है। लेकिन, अंतिम समाधान में दोनों पक्ष सहयोग के लिए सहमत होते हैं।[4] इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय संघ के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोण मौजूद हैं। कई लोग भारत को संघ मानते हैं। जबकि दूसरे इससे इनकार करते हैं। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भारत एक संघ है जिसमें एकात्मक शासन की मजबूत विशेषताएँ मौजूद हैं। हालाँकि पिछले वर्षों में विशेष तौर पर 1990 के बाद से भारतीय शासन व्यवस्था में महत्वपूर्ण बदलाव आए हैं और यह गहरे रूप से संघीयकरण की ओर मुड़ी है।[5]

भारतीय संघ की कार्य प्रणाली

जैसा कि हमने देखा है कि भारतीय संघ का झुकाव केंद्र की ओर है और इसलिए शक्तिशाली केंद्र सरकार की स्थापना की गई है। यही तथ्य भारतीय संघ की वास्तविक कार्य प्रणाली में भी देखा जा सकता है। भारतीय संघ के कार्य निष्पादन को तीन चरणों में बाँटा जा सकता है। प्रथम चरण 1950-1967 इस चरण में केंद्र और राज्यों में कांग्रेस की सरकारों का आधिपत्य रहा है। जवाहरलाल नेहरू के करिश्माई नेतृत्व में पहले से ही मजबूत केन्द्र और ज्यादा ताकतवर होकर सामने आया। मुख्यिमंत्रियों, मंत्रियों और विधाायी संस्थाओं के उम्मीदवारों का चयन नेहरू द्वारा किया जाता था। इस चरण में केंद्र और राज्य सरकारों के बीच कोई टकराव नहीं देखा गया क्योंकि केंद्र और लगभग सभी राज्यों में अपने अधिकारों के इस्तेमाल के प्रयास शुरु किए जिन्हें केंद्र ने अस्वीकार्य बताया।

इसी चरण में क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ। केंद्र की कांग्रेसी सरकार ने अनुच्छेद 356 के तहत राष्ट्रपति शासन लागू करके और दल-बदल कराकर पुनः राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का प्रयास किया। हालांकि इस परिवर्तन के बावजूद भी मध्यावधि चुनाव के बाद कांग्रेस पार्टी एक बार फिर केंद्र और राज्यों में सत्ता पर काबिज हो गई। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने संविधान में 42वां संविधान संशोधन किया। इससे राज्यों की शक्तियों में कटौती कर केंद्र को मजबूत बनाया गया। इस दौर में सत्ता का जबरदस्त केंद्रीकरण हुआ और देश में 1975-77 तक आपात स्थिति लागू रही। इंदिरा गांधी के काल में राज्य शक्तिहीन रहे और अतीत की तुलना में सत्ता का ज्यादा केंद्रीकरण हुआ। वर्ष 1977 से 1979 के दौरान केंद्र में गैर-कांग्रेसी सरकार रही। हालांकि यह सरकार विकेंद्रीकरण में विश्वास करती थी, लेकिन इसने भी वही सब कुछ किया जो कांग्रेस सरकार ने किया था। इस सरकार ने अनुच्छेद 356 का दुरुपयोग करते हुए नौ राज्यों में कांग्रेसी सरकारों को बर्खास्त कर दिया और उनकी विधानसभाएँ भंग कर दी। वर्ष 1980 में इंदिरा गाँधी ने केंद्र में सत्ता में वापसी की और जनता पार्टी व गठबंधन के नेतृत्व में बनी नौ राज्यों की सरकारों को सत्ता से हटा दिया। राजीव गाँधी देश के प्रधानमंत्री बने। केंद्रमुखी नीति अपनाने वाली अपनी मां के उलट राजीव गांधी ने क्षेत्रीय मांगों और आंदोलनों के विषयों के अनुसार सामंजस्य की नीति अपनाई।[6] उन्होंने क्षेत्रीय दलों के साथ गठबंधन करने का प्रयास किया जबकि उनके पास केंद्र में सत्ता थी।

भारतीय संघवाद का तीसरा चरण 1980 के दशक के अंत से शुरु होता है। यह गठबंधन सरकारों का युग था। गठबंधन युग में कांग्रेस का आधिपत्य बीते समय की बात बन गई। क्षेत्रीय दल जैसे तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (डीएमके) और अखिल भारतीय अन्ना द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (एआईएडीएमके),आंध प्रदेश में तेलुगू देशम पार्टी, बिहार में राष्ट्रीय जनता दल (आरजेडी) और लोक जनशक्ति पार्टी (एलजेपी), उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी (बीएसपी) और समाजवादी पार्टी (एसपी) तथा अन्य क्षेत्रीय दल ज्यादा

मुखर रूप से सामने आ गए। इन दलों की मुखरता ने केंद्र सरकार को कमजोर कर दिया। अनेक क्षेत्रीय दलों ने केंद्र में सरकार का गठन करने के लिए हाथ मिला लिए क्योंकि कोई भी दल अपने बूते पर सरकार का गठन करने की स्थिति में नहीं था।

इस परिदृश्य में क्षेत्रीय दलों के नेता (वी.पी. सिंह और एच.डी. देवेगौड़ा) प्रधानमंत्री बने। देवेगौड़ा की सरकार में क्षेत्रीय दलों के अनेक नेता मंत्री बनाए गए। यही स्थिति एनडीए और यूपीए सरकारों के साथ भी रही है। गठबंधन के इस युग में सत्ता राज्यों की ओर हस्तांतरित हो गई। केंद्र में सरकार गठित करने की प्रक्रिया में क्षेत्रीय दल प्रमुख अवयव बन गए। क्षेत्रीय दल के राज्य स्तरीय प्रमुख यह तय कर रहे हैं कि उनकी पार्टी से कौन केंद्रीय मंत्रिमंडल में शामिल होगा। इन नेताओं की राय मंत्रियों के विभागों के बंटवारे में भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यूपीए प्रथम (2004) की सरकार में आरजेडी के लालू प्रसाद ने गृह मंत्रालय और एलजेपी के रामविलास पासवान ने रेल मंत्रलय की मांग की। काफी विचार-विमर्श के बाद लालू प्रसाद को रेल मंत्रालय और रामविलास पासवान को रसायन, उर्वरक एवं इस्पात मंत्रालय पर मनाया गया। ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं। ऐसी स्थिति में जब किसी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता तब क्षेत्रीय दल प्रशासकीय प्रक्रिया में निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

इसका परिणाम यह हुआ कि प्रधानमंत्री की शक्ति और स्थिति कमजोर होती गई। फिलहाल प्रधानमंत्री क्षेत्रीय दलों से निर्देशित और नियंत्रित होता है जिनके नेता ताकतवर मुख्यमंत्री के. करुणानिधि, लालू प्रसाद यादव, मायावती, जे. जयललिता, एन.चंद्र बाबू नायडू और अन्य हैं। हालांकि अंतिम शक्ति और सत्ता प्रधानमंत्री में निहित है फिर भी प्रधानमंत्री को गठबंध न सहयोगियों की शर्तों पर काम करना होता है। दूसरी ओर राष्ट्रपति की भूमिका में इजाफा हो रहा है। गठबंध न की स्थिति में वह सरकार के गठन के लिए अपनी विवेकाधीन शक्तियों का इस्तेमाल कर सकता है। किसी दल द्वारा स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होने और लोकसभा को भंग करने में राष्ट्रपति की भूमिका बढ़ गई है।

इस बदलते हुए परिदृश्य में क्षेत्रीय दल न केवल केंद्र में अपना आधिपत्य जमा रहे हैं बल्कि कई राज्यों में सत्ता पर भी काबिज हैं। इस प्रक्रिया को न केवल स्वस्थ सहकारी संघवाद के रूप में देखा जा सकता है, बल्कि यह राष्ट्रीय एकता से भी जुड़ा है। राष्ट्रीय गठबंधन के सदस्य के तौर पर क्षेत्रीय दलों ने राष्ट्रीय नेताओं की ताकत कमतर करनी आरंभ कर दी है। ये क्षेत्रीय दल क्षेत्रीय हितों के आपसी टकराव पर भी बातचीत के लिए तैयार हैं।[7]

निष्कर्ष:

निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि भारतीय संघवाद धीरे-धीरे केंद्रीय संघवाद से बहुदलीय प्रणाली के तहत वास्तविक संघवाद की ओर बढ़ रहा है। समाज के बढ़ते राजनीतिकरण, दलीय प्रणाली के क्षेत्रीयकरण, राज्यों की स्वायत्तता के पक्ष में न्यायपालिका की सक्रियता और 1990 के दशक में शुरू हुए अर्थव्यवस्थाओं के उदारीकरण के प्रभाव में शासन प्रणाली का कार्य निष्पादन और ज्यादा संघवादी हो रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. नारायण, इकबाल, 'राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त', रतन प्रकाशन, दिल्ली, 1988, पृ. 73.
2. सिंह, एम.पी. एवं सक्सेना, रेखा, इंडियन पॉलिटिक्स : कन्टेपररी इसूज, प्रेन्टिस हॉल, नई दिल्ली, 2008, पृ. 138.
3. उपरोक्त, पृ. 152.
4. मिश्रा, सुब्रत के., 'फेडरलिज्म', संकलित मिरजा गोपाल जयाल (सं.) द ऑक्सफोर्ड कम्पेनियन ऑफ पॉलिटिक्स ऑफ इंडिया, ऑक्सफोर्ड, नई दिल्ली, 2010, पृ. 43.
5. उपरोक्त, पृ. 55.
6. सक्सेना, रेखा, सिचुएटिंग फेडरलिज्म मेकेनिज्म, मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2006, पृ. 151.
7. देखे सुब्रत के. मिश्रा, पूर्वोक्त, पृ. 68.